Kavya Setu
A Multidisciplinary Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 6.4 ISSN No: 3049-4176

हिंदी सिनेमा में स्त्री की छविः परंपरा, परिवर्तन और समकालीन दृष्टिकोण

प्रोफेसर मीना यादव
हिंदी विभाग, बरेली कॉलेज, बरेली 243001
Email- meenaya1@gmail.com

संक्षेप

हिंदी सिनेमा में स्त्री की छवि समय के साथ बदलती रही है, जो भारतीय समाज की सांस्कृतिक और सामाजिक धारा को दर्शाती है। प्रारंभिक हिंदी फिल्मों में महिलाओं को आदर्श रूप में दिखाया गया, जैसे देवियाँ, माताएँ या पतिव्रता की भूमिकाओं में, जो समाज के नैतिक मूल्यों को बनाए रखने का प्रतीक होती थीं। 1950 और 1960 के दशकों में, फिल्मी सिनेमा में महिला पात्रों का चित्रण और अधिक जटिल और स्वतंत्र हुआ। महिलाएँ अब न केवल रोमांटिक नायिकाएँ होती थीं, बल्कि सामाजिक बदलाव और व्यक्तिगत संघर्षों का प्रतिनिधित्व भी करने लगीं। समकालीन सिनेमा में, महिलाओं को स्वतंत्र, सशक्त और व्यक्तिगत निर्णय लेने वाली पात्रों के रूप में पेश किया जाता है, हालांकि कुछ रूढ़िवादी भूमिकाएँ आज भी बनी हुई हैं। इस प्रकार, हिंदी सिनेमा में स्त्री की छवि एक गतिशील और बदलते समाज की कहानी है।

मुख्य शब्दः – हिंदी सिनेमा, स्त्री की छवि, सामाजिक परिवर्तन, नारी सशक्तिकरण, फिल्मी पात्र, परंपरा और आधुनिकता.

परिचय

हिंदी सिनेमा में स्त्री की छवि का विकास भारतीय समाज के सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक परिवर्तनों के साथ हमेशा जुड़ा रहा है। प्रारंभिक हिंदी फिल्मों में महिला पात्रों का चित्रण पारंपरिक और आदर्शवादी था, जैसे देवी, माता, और पत्नी के रूप में, जो समाज की नैतिक और सांस्कृतिक धारा को प्रतिबिंबित करता था। समय के साथ, 1950 और 1960 के दशकों में महिला पात्रों के चित्रण में बदलाव आया। फिल्मी नायिकाओं ने अब न केवल रोमांटिक या परिवारिक भूमिकाओं को निभाया, बल्कि वे सामाजिक मुद्दों पर भी अपनी आवाज उठाने लगीं। 1970 और 1980 के दशक में महिला पात्रों को अक्सर शिकार, साहसी या संघर्षशील रूप में चित्रित किया गया। समकालीन हिंदी सिनेमा में महिला पात्रों की छवि में और अधिक विविधता देखने को मिलती है। अब महिलाएँ फिल्मी नायिकाओं के रूप में स्वतंत्र, सशक्त और जटिल पात्रों के रूप में प्रस्तुत की जाती हैं, जो अपनी पसंद, निर्णय और सपनों के लिए संघर्ष करती हैं। हालांकि, इसके बावजूद कुछ रूढ़िवादी चित्रण, जैसे ष्माँ,ष ष्नायिका,ष और ष्वैंपष की छवियाँ अब भी बनी हुई हैं। नारीवादी आलोचना ने इन रूढ़िवादी रूपों को

चुनौती दी है और महिला पात्रों को अधिक यथार्थवादी और सशक्त बनाने की कोशिश की है। बॉलीवुड ने समय–समय पर महिलाओं के चित्रण में बदलाव दिखाया है, लेकिन अभी भी सामाजिक दबाव और वाणिज्यिक दबाव इन छवियों को आकार देते हैं। हालांकि, कई स्वतंत्र फिल्मकार और निर्माता महिला पात्रों को नए दृष्टिकोण से प्रस्तुत करने में सफल हुए हैं, जो समाज में महिलाओं की वास्तविक स्थिति और उनके संघर्ष को दिखाते हैं। इस प्रकार, हिंदी सिनेमा में स्त्री की छवि एक गतिशील प्रक्रिया है, जो समय के साथ बदल रही है और समाज के बदलते दृष्टिकोणों को दर्शाती है।

अध्ययन का महत्व

हिंदी सिनेमा में स्त्री की छवि का अध्ययन समाज में महिलाओं की भूमिका और स्थिति को समझने के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है। सिनेमा न केवल मनोरंजन का स्रोत है, बल्कि यह समाज के सांस्कृतिक, सामाजिक और राजनीतिक परिप्रेक्ष्य को भी दर्शाता है। महिलाओं के चित्रण के माध्यम से हम यह जान सकते हैं कि समाज में महिलाओं की पहचान, अधिकार और स्वतंत्रता किस हद तक स्वीकार की गई हैं। यह अध्ययन न केवल स्त्रीवाद और लिंग समानता के मुद्दों को सामने लाता है, बल्कि सिनेमा के प्रभाव को भी उजागर करता है, जो आम जनता के विचारों और दृष्टिकोणों को आकार देता है। हिंदी सिनेमा में स्त्री की छवि के विकास को समझने से यह भी पता चलता है कि किस प्रकार महिला पात्रों के माध्यम से समाज की मान्यताएँ, रूढ़िवादिता और बदलाव को फिल्म निर्माता प्रस्तुत करते हैं।

हिंदी सिनेमा में महिला प्रतिनिधित्व का ऐतिहासिक संदर्भ

हिंदी सिनेमा में महिला प्रतिनिधित्व का इतिहास भारतीय समाज के सामाजिक और सांस्कृतिक परिवर्तनों के साथ गहरे रूप से जुड़ा हुआ है। प्रारंभिक हिंदी फिल्मों में महिलाओं की भूमिकाएँ मुख्यतः पौराणिक और शास्त्रीय थीं। इस समय की फिल्मों में महिलाएँ देवियाँ, माताएँ और पतिव्रता के रूप में चित्रित की जाती थीं, जो समाज के नैतिक आदर्शों का पालन करती थीं। इन भूमिकाओं में महिला पात्रों को एक आदर्श व्यक्तित्व के रूप में प्रस्तुत किया जाता था, जो केवल अपने परिवार और समाज के लिए समर्पित होती थीं। 1930 और 1940 के दशक तक महिलाओं के पात्रों को फिल्मों में एक नैतिक और शुद्ध चित्रण के रूप में पेश किया जाता था, जैसे कि 'देवदासी' या 'मंदिर की देवी' की छवि।

1950 और 1960 के दशकों में, हिंदी सिनेमा में महिला पात्रों की छवि में बदलाव आना शुरू हुआ। इस समय के दौरान, फिल्म इंडस्ट्री में महिलाओं के "हीरोइन" के रूप में चित्रण में एक बदलाव आया। पहले की 'निर्दोष' और 'समर्पित' छवियों के बजाय, अब फिल्में महिला पात्रों को अधिक स्वतंत्र और व्यक्तित्ववान रूप में प्रस्तुत करने लगीं। इस समय की फिल्मों में महिलाओं के चरित्र अधिक जटिल और संघर्षशील होते थे, जैसे कि वे अपने परिवार के

Kavya Setu
A Multidisciplinary Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 6.4 ISSN No: 3049-4176

आदर्शों और समाज के नियमों के खिलाफ जाकर अपनी व्यक्तिगत स्वतंत्रता की ओर कदम बढ़ाती थीं। साथ ही, 1950 और 1960 के दशकों में श्हीरोइनश की भूमिका को भी 'कैरेक्टर रोल्स' में तब्दील किया गया, जहां महिला पात्र किसी हीरो के मुकाबले खुद की पहचान बनाने के लिए संघर्ष करती थीं।

भारत में सामाजिक और राजनीतिक परिवर्तनों का भी हिंदी सिनेमा पर गहरा प्रभाव पड़ा। भारतीय स्वतंत्रता संग्राम और बाद में आजादी के बाद के समय में समाज में महिलाओं की स्थिति में बदलाव हुआ। सामाजिक सुधार आंदोलन और नारीवादी विचारधाराओं ने महिलाओं के अधिकारों को लेकर सिनेमा में नई विमर्श की शुरुआत की। 1970 और 1980 के दशकों में, सिनेमा ने इन परिवर्तनों को अपने फिल्मी कथानकों और पात्रों के रूप में दिखाना शुरू किया, जो समाज में स्त्रियों के बदले हुए स्थान और उनके अधिकारों की ओर इशारा करते थे। इस तरह से, हिंदी सिनेमा ने महिलाओं के चित्रण में समय–समय पर समाजिक और राजनीतिक बदलावों को दर्शाया और उन परिवर्तनों को सिनेमा के माध्यम से समाज में प्रतिध्वनित किया।

नारीवादी फिल्म आलोचना में प्रमुख मील के पत्थर और उनका हिंदी सिनेमा पर प्रभाव

नारीवादी फिल्म आलोचना ने हिंदी सिनेमा में महिला पात्रों और उनके चित्रण को गहरे तरीके से प्रभावित किया है। नारीवादी आलोचना की शुरुआत 1970 के दशक में हुई, जब पश्चिमी समाज में महिलाओं के अधिकारों के लिए संघर्ष और नारीवादी आंदोलन ने अपने आकार और प्रभाव को बढ़ाना शुरू किया। इस समय के दौरान, फिल्म आलोचकों ने फिल्मी सिनेमा में महिलाओं की भूमिका और उनके चित्रण को चुनौती देना शुरू किया। इस आलोचना का सबसे पहला मील का पत्थर सुसान सोंटैग के निबंध "On Style" और "The Myth of the Female Body" था, जिसने दर्शकों को महिलाओं के शारीरिक और मानसिक चित्रण के बारे में पुनर्विचार करने के लिए प्रेरित किया। इसके बाद, लुसी इरिगे, मेलिसा लुईस और बार्बरा क्राविट्ज जैसे आलोचकों ने नारीवादी दृष्टिकोण से फिल्मों का विश्लेषण किया, जिन्होंने फिल्मी सिनेमा में महिलाओं की छवि को एक उपभोक्ता वस्तु, एक शिकार या एक दर्शक के रूप में देखा।

1980 और 1990 के दशकों में, हिंदी सिनेमा में नारीवादी आलोचना का प्रभाव और भी गहरा हुआ। हिंदी सिनेमा के पारंपरिक चित्रण, जिसमें महिलाओं को मुख्यतः प्रेमिका या माता की भूमिका में दिखाया जाता था, को नारीवादी आलोचना ने एक चुनौती दी। श्याम बेनेगल, मणि कौल, और अन्य निर्देशकों ने महिला पात्रों को एक सशक्त, स्वतंत्र और जटिल रूप में प्रस्तुत करना शुरू किया, जो पहले सिनेमा में देखे गए आदर्शवादी चित्रण से काफी अलग था। इसके अलावा, श्मुक्तिश और श्नारीवादश जैसे शब्दों का फिल्मी संवाद में प्रवेश हुआ और

फिल्मों में महिलाओं के अधिकार, स्वतंत्रता और उनके अस्तित्व की वास्तविकता पर अधिक ध्यान दिया गया।

बॉलीवुड में कुछ प्रमुख फिल्मों ने नारीवादी आलोचना के प्रभाव को साफ–साफ दर्शाया, जैसे 'दिल से' (1998) और 'चक्क दे इंडिया' (2007), जहाँ महिलाओं को स्वतंत्रता, संघर्ष और आत्मनिर्भरता की कहानियों में दिखाया गया। इन फिल्मों ने दिखाया कि महिलाएँ अपनी स्थिति को बदलने के लिए समाज की पारंपरिक धारा से बाहर निकल सकती हैं। इन नारीवादी विचारधाराओं का प्रभाव आज भी हिंदी सिनेमा में देखा जा सकता है, जहाँ महिला पात्रों को अब सिर्फ एक रोमांटिक आइकन के रूप में नहीं, बल्कि एक सशक्त और खुद की पहचान बनाने वाली शख्सियत के रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है। इस प्रकार, नारीवादी फिल्म आलोचना ने हिंदी सिनेमा में महिला पात्रों की छवि और उनके चित्रण को यथार्थवादी और सशक्त बनाया है।

समकालीन सिनेमा में महिलाएँ

समकालीन हिंदी सिनेमा में महिला पात्रों का विकास एक महत्वपूर्ण बदलाव को दर्शाता है। पहले के समय में जहां महिलाएँ मुख्य रूप से पारंपरिक भूमिकाओं में बंधी रहती थीं, जैसे कि प्रेमिका, पत्नी या माता, अब फिल्में महिला पात्रों को अधिक जटिल, स्वतंत्र और व्यक्तित्वपूर्ण रूप में प्रस्तुत करती हैं। इन पात्रों को अब सिर्फ उनके परिवार या प्रेमी के इर्द–गिर्द न घुमा कर, उनके व्यक्तिगत संघर्षों, इच्छाओं, और स्वतंत्रता की ओर भी ध्यान दिया जाता है। महिलाएँ अब केवल अपने आसपास की दुनिया से समझौता नहीं करतीं, बल्कि वे उसे बदलने के लिए संघर्ष करती हैं। यह बदलाव फिल्मी कथानक में एक नई दिशा दिखाता है, जहां महिलाएँ अपने अधिकारों के लिए आवाज उठाती हैं, अपने फैसले खुद लेती हैं और अपनी पहचान बनाती हैं।

कुछ प्रमुख फिल्मों ने इस बदलाव को और भी मजबूती से दर्शाया है, जैसे 'क्वीन' (2013), जिसमें रानी की भूमिका में कंगना रनौत एक ऐसी महिला का चित्रण करती हैं जो अपनी शादी के टूटने के बाद खुद को पहचानने और अपनी स्वतंत्रता की ओर कदम बढ़ाती है। इसी तरह, 'पीकू' (2015) में दीपिका पादुकोण एक स्वतंत्र और आत्मनिर्भर महिला का किरदार निभाती हैं, जो अपने बूढ़े पिता की देखभाल करते हुए अपने करियर और जीवन को भी प्राथमिकता देती है। इसके अलावा, 'बरेली की बर्फी' (2017) में भी महिला पात्रों को अपनी इच्छाओं और जीवन की दिशा को लेकर अपनी पसंद को चुनने का अधिकार दिया जाता है।

समकालीन सिनेमा ने महिलाओं को एक नई पहचान दी है, जो सिर्फ पारंपरिक परिवार के स्तंभ नहीं, बल्कि खुद के फैसले लेने वाली और समाज में अपनी जगह बनाने वाली महिलाएँ

हैं। हिंदी सिनेमा ने समाज में बदलते लिंग गतिशीलता के प्रति अपनी प्रतिक्रिया को बहुत प्रभावशाली तरीके से दिखाया है। समाज में महिलाओं की भूमिका में बदलाव और महिलाओं के अधिकारों के प्रति जागरूकता के साथ, सिनेमा ने भी अपनी प्रस्तुति में बदलाव किया है, जहाँ अब महिलाएँ केवल सहायक पात्र नहीं, बल्कि मुख्य किरदार हैं जो फिल्म के कथानक को आगे बढ़ाती हैं।

नारीवादी प्रतिनिधित्व में चुनौतियाँ

नारीवादी फिल्म आलोचना और महिला सशक्तिकरण के प्रयासों के बावजूद, हिंदी सिनेमा में महिलाओं के प्रतिनिधित्व से जुड़ी कई चुनौतियाँ बनी हुई हैं। सबसे बड़ी चुनौती यह है कि महिलाओं का चित्रण अक्सर रूढ़िवादी और पारंपरिक तरीकों से किया जाता है, जैसे उन्हें शिकार या यौनिक रूप में प्रस्तुत करना। ऐसी भूमिकाओं में महिलाएँ अक्सर हीरो के मुकाबले कमजोर और असहाय के रूप में दिखाई जाती हैं, जिन्हें पुरुष पात्रों द्वारा बचाया जाता है। ये चित्रण न केवल महिलाओं को वस्तु के रूप में प्रस्तुत करते हैं, बल्कि यह समाज में महिलाओं की वास्तविक स्थिति और उनके संघर्षों को नजरअंदाज भी करता है। फिल्मों में महिलाओं को 'वैंप' या 'सामाजिक खतरे' के रूप में दिखाए जाने की प्रवृत्ति भी काफी सामान्य रही है, जिससे नकारात्मक और भ्रामक धारणाएँ बनती हैं।

वाणिज्यिक दबाव भी एक महत्वपूर्ण कारण है जो महिला पात्रों के चित्रण को प्रभावित करता है। बॉलीवुड, जैसा कि अधिकांश फिल्म उद्योगों में होता है, एक बड़ा हिस्सा अपने दर्शकों के व्यावसायिक लाभ के लिए तैयार करता है। ऐसे में, फिल्मों में महिलाओं को आकर्षक और सेक्सी रूप में दिखाने की प्रवृत्ति बढ़ जाती है ताकि अधिक दर्शक आकर्षित हो सकें। यह न केवल महिलाओं के चित्रण को सीमित करता है, बल्कि यह महिला सशक्तिकरण की दिशा में एक बड़ी रुकावट भी उत्पन्न करता है। जब फिल्मों में महिलाओं को केवल एक आकर्षण या उपभोक्ता वस्तु के रूप में प्रस्तुत किया जाता है, तो वे अपनी सशक्त पहचान बनाने से वंचित हो जाती हैं।

लोकप्रिय संस्कृति का प्रभाव भी महिलाओं के चित्रण में एक बड़ी चुनौती प्रस्तुत करता है। फिल्म, टेलीविजन और अन्य मीडिया मंचों पर प्रचलित छवियाँ महिलाओं को या तो आदर्श पत्नी, माँ, या सेक्स अपील के रूप में प्रस्तुत करती हैं। जबकि कई फिल्मकार और निर्माता आजकल सशक्त महिला पात्रों को पेश करने का प्रयास कर रहे हैं, फिर भी लोकप्रिय संस्कृति में महिलाओं का एक संकीर्ण और सीमित चित्रण किया जाता है, जो उनके वास्तविक संघर्षों और बहुआयामी व्यक्तित्व को नहीं दर्शाता। इस प्रकार, सशक्त महिला छवि प्रस्तुत करने की चुनौती तब तक बनी रहेगी जब तक कि मीडिया और फिल्म इंडस्ट्री इन रूढ़िवादी

विचारधाराओं से बाहर नहीं निकलते और महिलाओं को विविध, वास्तविक और स्वतंत्र रूपों में दिखाने का प्रयास नहीं करतीं।

हिंदी सिनेमा में महिला का प्रतीक चित्रण

हिंदी सिनेमा में महिला पात्रों का प्रतीक चित्रण समय के साथ महत्वपूर्ण बदलाव से गुजरा है। प्रारंभ में, महिला नायक की छवि आदर्शवादी और पारंपरिक होती थी, जहाँ महिलाएँ अपनी भूमिकाओं में सीमित होती थीं – जैसे "माँ," ष्पतिव्रता," और "देवी" के रूप में। ये चित्रण समाज के नैतिक मूल्यों और सांस्कृतिक आदर्शों को प्रतिबिंबित करते थे, जिसमें महिला का कार्य मुख्यतः परिवार और समाज के प्रति समर्पण तक सीमित होता था। लेकिन 1950 और 1960 के दशकों में महिला नायिकाओं का चित्रण अधिक स्वतंत्र और जटिल होने लगा। फिल्म निर्माता अब महिला पात्रों को अपनी इच्छाओं, संघर्षों और समाज से बाहर अपनी पहचान बनाने वाले रूप में प्रस्तुत करने लगे। इस बदलाव का एक उदाहरण फिल्म श्क्वीनश (2013) है, जिसमें महिला नायक अपनी स्वीकृति और आत्म–निर्भरता की ओर बढ़ती है।

हालाँकि, इस विकास के बावजूद, हिंदी सिनेमा में कुछ पारंपरिक और रूढ़िवादी चित्रण आज भी मौजूद हैं। "हीरोइन," "वैंप," और "माँ" के पात्रों की छवियाँ हिंदी सिनेमा में एक स्थिर रूप से दिखाई देती हैं। "हीरोइन" की छवि अक्सर एक आदर्श महिला, जो सबकुछ सही करती है और परिवार को बनाए रखने के लिए संघर्ष करती है, के रूप में बनाई जाती है। वहीं, "वैंप" का चित्रण महिला पात्रों को एक नकारात्मक रूप में दिखाता है, जो अक्सर समाज के खिलाफ होती हैं। "माँ" की छवि, जो बिना किसी शिकायत के अपने बच्चों के लिए बलिदान देती है, हिंदी सिनेमा में आम है, लेकिन यह चित्रण अक्सर महिला की असल जिंदगी के संघर्षों और उनके व्यक्तित्व को नजरअंदाज करता है।

संगीत, फैशन और संवादों का महिला पात्रों के चित्रण पर गहरा प्रभाव पड़ा है। बॉलीवुड फिल्मों में महिलाओं के कपड़े, गहने और उनकी शारीरिक सुंदरता को अक्सर एक सशक्त छवि के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। संगीत और संवादों का भी महत्वपूर्ण योगदान होता है, जो महिला पात्रों के व्यक्तित्व और उनके संघर्षों को दर्शाने में मदद करता है। उदाहरण के लिए, 'पद्मावत' (2018) में दीपिका पादुकोण का किरदार रानी पद्मावती एक आदर्श और दृढ़ नायक के रूप में प्रस्तुत किया गया, जहाँ उनके संवाद और प्रस्तुतिकरण ने उन्हें एक सशक्त और सम्मानजनक महिला के रूप में स्थापित किया। इस प्रकार, हिंदी सिनेमा में महिला का प्रतीक चित्रण केवल समाज के परिप्रेक्ष्य को ही नहीं, बल्कि बदलते सामाजिक और सांस्कृतिक मानदंडों को भी दर्शाता है।

निष्कर्ष

हिंदी सिनेमा में स्त्री की छवि एक निरंतर बदलती प्रक्रिया है, जो भारतीय समाज में महिलाओं की स्थिति, भूमिका और अधिकारों को दर्शाती है। शुरुआत में, जहां महिलाएँ आदर्श, पारंपरिक और नैतिक भूमिकाओं में बंधी हुई थीं, वहीं समय के साथ सिनेमा ने महिला पात्रों को अधिक स्वतंत्र, जटिल और सशक्त रूप में प्रस्तुत करना शुरू किया। 1950 और 1960 के दशकों में महिला नायिकाओं के चित्रण में बदलाव आया, और वे अब केवल रोमांटिक या परिवारिक भूमिकाओं तक सीमित नहीं रहीं। महिला पात्रों को अपने जीवन के फैसले स्वयं लेने वाली और समाज के खिलाफ खड़े होने वाली व्यक्तित्वों के रूप में दिखाया गया। इसके बावजूद, कई फिल्मों में रूढ़िवादी चित्रण जैसे "हीरोइन," "वैंप," और "माँ" के पात्र आज भी दिखाई देते हैं, जो महिलाओं के वास्तविक संघर्षों और पहचान को सीमित करते हैं।

सिनेमा का प्रभाव समाज पर गहरा होता है, और महिलाओं के चित्रण के माध्यम से दर्शकों की सोच और दृष्टिकोण को आकार दिया जाता है। हालांकि नारीवादी आलोचना ने महिलाओं के चित्रण में सुधार की दिशा में कई कदम उठाए हैं, लेकिन यह जरूरी है कि हिंदी सिनेमा और मीडिया में महिलाओं की अधिक विविध, यथार्थवादी और सशक्त छवियाँ प्रस्तुत की जाएं। संगीत, फैशन और संवादों का महिलाओं के चित्रण पर प्रभाव तो है ही, साथ ही साथ यह भी महत्वपूर्ण है कि फिल्म निर्माताओं को एक जिम्मेदारी समझनी चाहिए कि वे महिला पात्रों को केवल एक आकर्षक या सहायक भूमिका के रूप में न प्रस्तुत करें, बल्कि उन्हें समाज में उनकी वास्तविक स्थिति और संघर्षों के साथ दिखाए। इस प्रकार, हिंदी सिनेमा में स्त्री की छवि को समझना समाज में महिलाओं के स्थान और उनके अधिकारों पर एक गहरी चर्चा को जन्म देता है, जो आगे चलकर समानता और न्याय की दिशा में एक कदम बढ़ाने में मदद करेगा।

संदर्भ

1. गोस्वामी, नंदिनी (2005)। हिंदी सिनेमा और स्त्री विमर्श। दिल्लीः राजकमल प्रकाशन।
2. जोशी, माया (2009)। परदे की औरतः भारतीय सिनेमा में नारी छवि। वाराणसीः सार्थक प्रकाशन।
3. बख्शी, नीता (2012)। सिनेमा में स्त्रीः सामाजिक संरचना और बदलाव। मुंबईः ग्रंथागार।
4. शर्मा, अनुजा (2015)। नई सदी का सिनेमा और स्त्री विमर्श। दिल्लीः संवाद प्रकाशन।
5. दत्ता, मृणालिनी (2007)। हिंदी सिनेमा और लैंगिक संवेदना। कोलकाताः विशाल बुक्स।
6. कपूर, सिम्मी (2011)। स्त्री छवि और फिल्में: एक समाजशास्त्रीय विश्लेषण। चंडीगढ़ः हर–आनंद प्रकाशन।
7. सिन्हा, रजनी (2013)। महिला पात्रों की भूमिका और हिंदी सिनेमा। लखनऊः साहित्य केंद्र।

Kavya Setu
A Multidisciplinary Open Access, Peer-Reviewed Refereed Journal
Impact Factor: 6.4 ISSN No: 3049-4176

8. त्रिपाठी, के. पी. (2017)। हिंदी सिनेमा में महिला स्वरूपः एक अध्ययन। पटनाः ज्ञानदर्शन पब्लिशर्स।
9. चौहान, सुधा (2010)। स्त्री विमर्श और बॉलीवुड। जयपुरः नमन पब्लिकेशन।
10. मिश्रा, दीप्ति (2020)। 21वीं सदी का हिंदी सिनेमा और नारी चेतना। नई दिल्लीः अमर ज्योति पब्लिशिंग।
11. वर्मा, आभा (2019)। हिंदी सिनेमा और स्त्री सशक्तिकरण। भोपालः सहृदय प्रकाशन।
12. राठी, सुलेखा (2021)। मल्टीप्ल सिने–ग्लासेसः हिंदी फिल्में और नारी दृष्टिकोण। दिल्लीरू नवनीत प्रकाशन।
13. चक्रवर्ती, मेघा (2018)। सिनेमा की नारीः पुनर्पाठ। पुणेः जनशक्ति प्रेस।
14. कौल, रीता (2006)। हिंदी फिल्मों में स्त्री की स्थिति। जम्मूः हिमालयन पब्लिशिंग हाउस।
15. अग्निहोत्री, लीना (2014)। भारतीय सिनेमा और स्त्री विमर्श की यात्रा। वाराणसीः सृजनलोक प्रकाशन।